Name	:	Dr. Sangita Kumari
Designation	:	Assistant Professor
Department/College	:	Department of Hindi Jagjiwan Mahavidyalaya (Magadh University) Manpur, Gaya

Subject	:	Hindi
Course Type	:	UG
Course	:	**स्नातक हिंदी प्रतिष्ठा (तृतीय वर्ष)** प्रश्न पत्र आठ: दलित साहित्य और स्त्री विमर्श **B.A. (Hons) Hindi, IIIrd Year** Paper 8: Dalit Sahitya Aur Stri Vimarsh
Title/Heading of E-Content	:	**Aadhunik Bharat Mein Dalit** **(आधुनिक भारत में दलित)**

Whatsapp Number:- 9773657760 (only Whatsapp)

आधुनिक भारत में दलित

Dr. Sangita Kumari
Assistant Professor
Department of Hindi
Jagjiwan Mahavidyalaya
(Magadh University)
Manpur, Gaya

भारत की जिस प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का महिमामंडन करते हुए हिन्दू समाज नहीं थकता और सनातन काल से चली आ रही सामाजिक भेदभाव पर शर्म करने की जगह स्वयं को गौरवान्वित महसूस करता है उसी समाज की देन है दलित साहित्य। यह वही समाज है जहाँ विश्व की सबसे बुरी प्रथा, सती प्रथा जैसी प्रथा विद्यमान थी वहीं कई परिवारों में पुत्री के जन्म लेते ही उसकी हत्या कर दी जाती थी। ऐसा समाज जहाँ मनुष्य को मनुष्य का दर्जा न दिया जाता हो, एक ऐसा शोषणमूलक तंत्र जिसके द्वारा हजारों वर्षों तक दी गई प्रताड़ना और भेदभाव ने उन्हें शारीरिक ही नहीं मानसिक रूप से भी पंगु बना दिया है। वर्षों की इस पीड़ा और टीस से निकलने की छटपटाहट है दलित साहित्य।

सबसे पहले "दलित" शब्द को समझे कि दलित क्या है? ओमप्रकाश बाल्मीकि के शब्दों में- "दलित शब्द का अर्थ है जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनिष्ट, मर्दित, पस्त-हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित आदि।"[1]

[1] ओमप्रकाश बाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, राधकृष्ण प्रकाशन, २०११, पृष्ठ १३०

डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन दलित शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं- "दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।"[2] इसी प्रकार केवल भारती का मानना है कि "दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है जिसे कठोर और गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया... जिन्हें अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है।"[3] नारायण सूवे के अनुसार "दलित शब्द की मिली-जुली परिभाषाएँ हैं। इसका अर्थ केवल बौद्ध या पिछड़ी जातियाँ ही नहीं समाज में जो भी पीड़ित है वे दलित हैं।"[4]

इस तरह दलित चिंतकों की व्याख्याएँ बेशक अलग हों पर सबके मूल में एक ही तथ्य है और वह है हजारों वर्षों की प्रताड़ना और उन पर किया गया अत्याचार। ऐतिहासिक रूप से दलित वस्तुतः उस वर्ग से संबंधित है जिसे प्राचीन सामाजिक वर्ण-व्यवस्था में से किसी भी वर्ण में स्थान नहीं दिया गया। चारो वर्णों से इतर चांडाल, अस्पृश्य, अंत्यज न जाने कितने अपमानजनक नामों से विभूषित किया गया। मनुस्मृति हो, याज्ञवलक्य या वृहस्पति सभी स्मृतियों ने इनके लिए केवल दंड का ही प्रावधन किया मानो इनका जन्म ही हुआ है सिर्फ जीवन भर अपमान का घूंट सहने के लिए और तथाकथित उच्च वर्णों की सेवा के लिए। दलितों पर किए गए इस अत्याचार ने उनके भीतर की सारी शक्ति को सोख लिया अपने समय में झेले गए इस अमानवीय व्यवहार ने आने वाली पीढ़ी के भीतर भी सिर्फ कुंठा और भय का ही सृजन किया। अर्थात् अतीत और अतीत बोध किसी भी व्यक्ति के मानस पटल पर अंकित हो जाता है और इसका उसके अस्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है। स्पष्ट है कि सवर्णों के लिए अतीत बोध गौरव का विषय हो सकता है पर क्या किसी शोषित व्यक्ति के लिए यह गौरव का विषय हो सकता है? निश्चित रूप से नहीं। दरअसल ऐसे ही सवालों से टकराने का काम दलित साहित्य ने किया। इसने अपने साहित्य के माध्यम से दलित समाज को उन पर किए जा रहे अत्याचार शोषण आदि का अहसास कराया। दलित साहित्य ने दलितों की पीड़ा को समाज के सामने लाने का प्रयास किया जो अब भी जारी है।

---

[2] वही, पृष्ठ १३

[3] वही, पृष्ठ १४

[4] पृष्ठ १९

1970 के दशक में दलित पैंथर्स ने उस शब्द को फिर से व्याख्यायित किया जिसे 1930 के दशक में ब्रिटिशों ने डिप्रेस्ड क्लास (Depressed Class) कहा था। उसी का अनुवाद मराठी और हिन्दी में क्रमशः "दलित" शब्द के रूप में हुआ और 1935 के भारत सरकार अधिनियम में इसे विधिवत रूप से अनुसूचित जाति नाम से शामिल किया गया। दरअसल 1970 के दलित पैथर्स उत्तरी अमेरिका के अश्वेत आंदोलन और नीग्रो साहित्य से प्रभावित थे और ब्लैक पैथर की तर्ज पर इन्होंने दलित पैंथर की बात की। इसके अतिरिक्त 1968 तक नक्सलवाड़ी आंदोलन हो चुका था और इसका प्रभाव भी दलित साहित्य और दलित आंदोलन दोनों पर पड़ा। दरअसल दलित वर्ग जो सामाजिक बर्बरता का मुकाबला कर पाने में सक्षम नहीं होते इनकी ओर सहज ही आकर्षित हो जाते हैं। इसी "दलित चेतना और आंदोलन के विकास के साथ-साथ दलित साहित्य भी विकसित हुआ जिसने जनवाद-प्रगतिवाद के सांस्कृतिक मुद्दों को अपने अनुभव और यथार्थ की खराद पर घिस कर अपने अनुरूप तराश कर इस विधा को प्रखरतम किया"[5]।

दलितों द्वारा अपनी पहचान के लिए विशेष रूप से आत्मकथा को ही उपन्यास के रूप में लिखने की जरूरत क्यों पड़ी? या अपनी साहित्यिक रचनाओं को चाहे कविता, कहानी, पत्र-पत्रिका कुछ भी हो उन्हें दलित साहित्य के अंतर्गत क्यों रखनी पड़ी? ऐसे कई सवाल हैं जो दलित साहित्य को लेकर उठते हैं। क्यों उनकी रचनाओं में इतना तीखापन और पैनापन है? स्पष्ट है कि यह हिन्दी साहित्य के भीतर दलित रचनाओं की उपेक्षा है जो उन्हें अलग से साहित्य लिखने पर मजबूर कर रही है। आत्मकथा की आभा आकस्मिक नहीं है यह उनकी अस्मिता से जुड़ा हुआ सवाल है। यही सब कारण है कि कई बार दलित साहित्यकार भक्तिकाल के निम्न जाति के संत कवियों में अपनी ऐतिहासिकता ढूँढते हैं या बौद्ध-धर्म के प्रति आकर्षित होते हैं, क्योंकि उन्हें पता है कि कम से कम वहाँ उन्हें समानता का दर्जा मिलेगा। बौद्ध धर्म की इसी प्रासंगिकता के कारण बाबा साहब बौद्ध-धर्म स्वीकार करते हैं और आज भी कई दलित इसे सहर्ष स्वीकार रहे हैं। इसके अलावे दलित अपने को आदिम समाज से जोड़ते हैं और ब्राह्मण सभ्यता का पुरजोर विरोध करते हैं यहाँ तक कि समाज में आमूल चूल परिवर्तन

---

[5] शरणकुमार लिंबाले, *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र*, वाणी प्रकाशन, २०१०, पृष्ठ ११

की वकालत करते हैं। एक मराठी लेखक अर्जुन दांगले तो यहाँ तक कह देते हैं कि सूर्य को भी बदलने की जरूरत है।

इस तरह दलित साहित्यकार प्राचीन काल से चली आ रही भारतीय समाजिक व्यवस्था की कट्ु आलोचना करते हुए हिन्दी साहित्य के सौन्दर्य संबंधी प्रतिमानों से भी अपने को अलग करके देखते हैं। परंपरागत साहित्य से अलग ये अपने नये प्रतीक, मिथक, विधा, शैली यहाँ तक कि भाषा भी गढ़ते हैं और सौन्दर्य की सत्यं, शिवं और सुंदरम् जैसी भाषा के विपरीत असत् , अशिव और असुंदर को स्थापित करते हैं। इनके लिए सामाजिक मूल्य ही इनका सौन्दर्य मूल्य है। इस तरह दलित साहित्य में व्यक्त हुआ जीवन दर्शन इनके अनुभव संसार का जीवन दर्शन है। इनका यथार्थ अलग है। इनकी भाषा शिष्ट संकेत और व्याकरण के नियम न मानने वाली भाषा है बेशक इनके साहित्य पर आक्रोश पूर्ण होने का आरोप लगाया गया हो पर यह आक्रोश शोषण की वेदना, विद्रोह और क्रोध की अभिव्यक्ति है।

अतः इनके साहित्य में व्यक्त क्रोध, वेदना साहित्य का सहज भाव है। इस तरह वर्षों से चली आ रही शोषण आधारित ब्राह्मणवादी व्यवस्था को चुनौती देने का कार्य सर्वप्रथम इसी साहित्य ने किया। दलित साहित्य ने दलित समाज को अभिव्यक्ति दी। डॉ. शरण कुमार लिंबाले के अनुसार- इस नई साहित्यिक धारा ने भारतीय साहित्य को समृद्ध किया है। नए अनुभव, नई अनुभूति, नए शब्द, नए नायक, नई दृष्टि और वेदना विद्रोह का रसायन दिया है। इतना ही नहीं इसने तो भारतीय साहित्य समीक्षा को आत्मपरीक्षण करने के लिए लगा दिया और पाठक समीक्षकों के मन में मूलभूत प्रश्न पैदा किए”[6]।

---

[6] वही, पृष्ठ ४६